International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 18-04-2021, Accepted: 07-05-2021, Published: 24-05-2021
Volume 7, Issue 3, 2021, Page No. 48-55

आदिवासी उपन्यास तथा पारिस्थितिकी-तंत्र का विश्लेषण

डॉ. राठोड पुंडलिक

हिंदी विभाग, कर्नाटक केंद्रीय विश्वविद्यालय, कलबुरगी, कर्नाटक, भारत

सारांश

पारिस्थितिकी तंत्र एक सुसंगठित एवं प्राकृतिक संसाधन क्षेत्र होता है। इस तंत्र की उत्पादकता इसमें ऊर्जा की सुलभता एवं ऊर्जा की संतुलित गति पर निर्भर करती है। यह एक खुला तंत्र होताहै जिसमें पदार्थो तथा ऊर्जा का सतत निवेश (Input) तथा बहिर्गमन (Output) होता है। यह निवेश और बहिर्गमन प्रक्रिया कई प्रकार के पोषण स्तरों से युक्त खाद्य सृखलाओं एवं खाद्य जालों के माध्यम से संपन्न होती है।

पारिस्थितिकी तंत्र में जैविक और अजैविक घटक होते हैं। इन सारे घटकों के बीच अंतर्संबंध होता है जो अघोषित प्राकृतिक नियमों के अनुसार चलता है। जैविक और अजैविक घटकों की कुछ सीमाएँ तथा कुछ विशेषताएँ होती हैं। फलत: परितंत्र में अघोषित प्राकृतिक नियमों का पालन अनायास होता रहता है। आज के वैश्वीकरण और बाजारवाद के समय में परितंत्र में प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन हो रहा है| परिणामस्वरूप परितंत्र सिमटते जा रहे हैं और पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं।

आदिवासी समाज परितंत्र में प्राचीन काल से जीवनयापन करता आया है। उसकी जीवन शैली परितंत्र के अघोषित नियमों के अनुरूप होती है। आदिवासी उन नियमों का पालन करते हुए वन्य-जीवों के प्राकृतिक अधिकारों को मान्यता देते हैं तथा प्रकृति, परितंत्र, वन्य-प्राणियों के साथ सहजीवी जीवन व्यतीत करते हैं। आज आदिवासियों के प्रकृति प्रेमयुक्त जीवन को सभ्य समाज द्वारा स्वीकार करने की आवस्यकता है।

मूल शब्द: पारिस्थितिकी, पारिस्थितिकी तंत्र, पर्यावरण, पर्यावरण निम्नीकरण, जैविक-अजैविक घटक, वन्य-परितंत्र, संवेदनशील जीवन शैली, प्राकृतिक अधिकार, परितंत्र के अघोषित नियम, आदिवासी, वन का व्यावसायिकरण, पर्यावरण संरक्षण।

प्रस्तावना

आज का समय विभिन्न पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रहा है। वैश्विक स्तर पर सारे देश, विचारक, बुद्धिजीवी एवं वैज्ञानिक इस बात पर सहमत हैं कि पर्यावरणीय चुनौतियों का प्रमुख कारण मानव द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक और अनियंत्रित दोहन है। प्रकृति द्वारा संसाधन निर्माण की प्रक्रिया तथा मानव की दोहन प्रक्रिया में योग्य सामंजस्य की आवश्यकता होती है किंतु यह सामंजस्य अब टूटने लगा है और मनुष्य प्राकृतिक नियमों के विपरित दोहन प्रक्रिया के तहत कार्बनडाईआक्साइड जैसी हरित गैसों का व्यापक स्तर पर उत्सर्जन करने लगा है। फलत: पार्थिव उष्मण की समस्या आज विश्व के समक्ष खडी है।

पार्थिव उष्मण के फलस्वरूप पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी तंत्र पर गम्भीर नकारात्मक प्रभाव पड रहा है। इस नकारात्मक प्रभाव के कारण आज का समय भूकम्प, सुनमी, असमय वर्षा, बाढ, सूखा, अत्यधिक चक्रवातों का बनना, समुद्र जल स्तर में वृद्धि आदि प्राकृतिक आपदाओं से ग्रस्त है। कहना न होगा कि जब प्रकृति की सहनशीलता समाप्त हो जाती है तब प्रकृति पुन: संतुलन की स्थिति बनाती है, यह भी उपर्युक्त आपदाओं का एक और कारण हो सकता है किंतु जब मानवीय अनियंत्रित उपभोगवादी प्रवृति के कारण सम्भावित परिणाम पर विचार विमर्श हुआ तब मानव पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी संरक्षन हेतु अग्रसर हुआ। इसी पृष्टभूमि के अंतर्गत पारिस्थितिकी अध्ययन की अवधारणा विकसित हुयी है।

पारिस्थितिकी वह विज्ञान है जिसके अंतर्गत समस्थ जीवों तथा भौतिक पर्यावरण के मध्य उनके अंतर्संबंधों का अध्ययन किया जाता है। यद्यपि Oecology शब्द का

सर्वप्रथम प्रयोग अर्नस्ट हैकले ने सन 1869 में किया था। यह शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों Oikos (रहने का स्थान) और Logos (अध्ययन) से बना है। आगे चलकर Oecology को Ecology कहा जाने लगा। वर्तमान समय में पारिस्थितिकी संकल्पना को व्यापक रूप प्रदान किया गया है। अब पारिस्थितिकी के अंतर्गत न केवल पौधे एवं जंतुओं तथा उनके पर्यावरण के बीच अंतर्संबंधों का ही अध्ययन किया जाता है वरन मानव, समाज और उसके भौतिक पर्यावरण की अंतरक्रियाओं का भी अध्ययन किया जाता है। पारिस्थितिकी के अंतर्गत विभिन्न अंतर्सम्बंधो को पारिस्थिकी तंत्र कहा जाता है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रोयोग जी.एस. टांसले द्वारा सन 1935 में किया गया था।

परितंत्र एक विशेष अथवा विशिष्ठ क्षेत्र होता है। जैसे वन, चारागाह, रेगिस्तान, जलीय तटीय क्षेत्र आदि। परितंत्र में जैविक और अजैविक घटकों के मध्य कार्मिक संतुलन की आवश्यकता होती है जो एक दूसरे से प्रभावित भी होते हैं। आज मनुष्य की असीमित इच्छाओं, आकांक्षाओं का सभी प्रकार के परितंत्रों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। यही पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी निम्नीकरण का प्रमुख कारण है। लेकिन आदिवासी समाज की जीवन शैली पर्यावरण हितैषी और संधारणीय है। आदिवासी समाज जंगल, पठार, चारागाह, रेगिस्तान, तटीय जैसे विभिन्न परितंत्रों में आपना जीवन प्राचीन काल से व्यतीत करता हुआ पर्यावरण की रक्षा करता आया है। उसकी जीवन प्रणाली पर्यावरण हितैषी है। वह परितंत्र की सूक्ष्म क्रियाकलापों एवं परितंत्र में विभिन्न प्राणी जात के व्यवहारों को जानता, समझता और अनुभव करता है तथा उन्हीं क्रिया-कलापों के अनुरूप अपने जीवन को भी ढालता रहता है। इसलिए आज पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी संरक्षन हेतु आदिवासी जीवन शैली को समजना आवश्यक है।

परितंत्र और आदिवासी समाज की जीवन शैली का अध्ययन कुछ प्रश्नों के उत्तरों की खोज करते हुए पूर्ण किया जा सकता है। जैसे परितंत्र की संरचना तथा उसका ढाँचा कैसा है?, उसके पेढ, पौधों एवं पशु, पक्षियों, प्राणियों की प्रजाति संरचना कैसी है? परितंत्र में सभी जीवों में आपसी व्यवहार कैसा होता है? तथा इन व्यवहारों के प्रति आदिवासी समाज कैसे अनुकूलन स्थापित करता है? प्रस्तुत शोध- आलेख में इन्हीं प्रश्नों के उत्तर आदिवासी जन-जीवन पर आधारित उपन्यासों के माध्यम से शोधने का प्रयास किया गया है।

यदि हम आदिवासी उपन्यास का अध्ययन करें तो स्पष्ट हो जाता है कि इन उपन्यासों में भारतीय भौगोलिक पारितंत्रों पर लेखकों ने अपनी विहंगम दृष्टि का परिचय दिया है । 'जहाँ बांस फूलते हैं' उपन्यास में पूर्वोत्तर के सदाहरित नव पारितंत्र, 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में हिमालयी पारितंत्र, 'धुणी तपे तीर' में पश्चिमोत्तर के पारितंत्र की कुछ झाँकियाँ, 'सालवानों के द्वीप', 'रथ के पहिए', 'पठार पर कोहरा', 'ग्लोबल गाँव के देवता', 'मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ' आदि उपन्यासों में मध्य भारत के 'पर्णपाती वनपारितंत्र' तथा नदी, झीलों और तालबों आदि पारितंत्रों का परिचय मिलता है । पर्यावरण और पारिस्थितिकी का सूक्ष्म उद्घाटन 'महुआ माजी' द्वारा रचित उपन्यास मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ' में हुआ है । इस उपन्यास के आधार पर पर्यावरण अध्ययन तथा आदिवासी जीवन प्रक्रिया का विश्लेषण किया जा सकता है ।

विभिन्न प्रकार के पारितंत्रों में आदिवासी समाज वन्य पारितंत्र से सर्वाधिक रूप से जुड़ा है। अतः वन्य पारितंत्र के साथ आदिवासियों के सहजीवी जीवन प्रक्रिया समकलीन जलवायु परिवर्तन के समय संधारणीय एवं प्रासंगिक है।

वन्य पारितंत्र

वन पौधों का समुदाय है। उसकी संरचना मुख्यतः पेड़ों, लताओं, झाड़ियों और भू-आवरण से निर्धारित होती है । प्राकृतिक वनस्पति सुव्यवस्थित कतारों में बोए पौधों से बहुत भिन्न नज़र आती है और होती है । अधिकांश अछूते प्राकृतिक वन हमारे राष्ट्रीय पार्कों एवं अभयारण्यों में स्थित हैं । विभिन्न प्रकार के वन विभिन्न प्रकार के जीव समुदायों के आवास होते हैं जो उनमें रहने के लिए अनुकूलित होते हैं । जीवों के समान आदिवासी समुदायों में भी विभिन्न प्रकार के वनों में अधिकांश वृक्ष जैसे सतपुड़ा पर्वत श्रेणी के गोंड समुदायों के लिए महुआ का वृक्ष पवित्र होता है । "महुआ खूब जानता है कि लोग उनके फूलों को खाना पसंद करते हैं । इसलिए साँवली-सलोनी कुलवधुएँ और कुमारियाँ हाथ में अपनी-अपनी डालियाँ उठाए महुआ के फूल चुनने चली आती हैं।"[1]

महुआ का वृक्ष इस समुदाय की जीवन प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । उनकी सारी सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक क्रियाएँ भी महुआ के आलावा अधूरी होती हैं । इस क्षेत्र में महुआ इसलिए इतना महत्वपूर्ण है क्योंकि इस क्षेत्र में महुआ वृक्ष अधिकांश पाए जाते हैं । अतः

जनजातीय समाज ने इस वृक्ष को विशेष रूप से अपने जीवनाधार के रूप में ग्रहण किया। इसी प्रकार पूर्वी मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड में सालवनों की बहुतायत है। इसलिए वहाँ निवासित जनजातीय समुदाय के देवता 'सिंगबोंगा' साल वृक्षों पर वास करते हैं। वहाँ साल वनों की प्रकृति के अनुसार उन्होंने अपना जीवन विकसित किया है।

वन्य पारितंत्र के दो भाग होते हैं । वन के अजैव पक्ष पहाड़, पहाड़ियों के वन नदी-घाटियों के वनों से भिन्न होते हैं। वनस्पति वर्षा और स्थानीय तापमान पर निर्भर होती है । यह अक्षांश, ऊँचाई और मिट्टी के प्रकार के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकती है । वन के जीवन युक्त अथवा जैविक पक्ष पौधों और पशुओं के समुदाय वन के सभी प्रकार के लिए अलग-अलग होते हैं। अतः बर्फ का तेंदुआ हिमालय में रहता है जबकि चीता और बाघ शेष भारत के जंगलों में पाए जाते हैं । इन वन्य जीवों का अपना एक अलग और विशिष्ट संसार होता है और उन प्राणियों की क्रियाएँ तथा नियम भी अलिखित होते हैं किंतु सभी प्राणी अवश्य उन नियमों का पालन करते हैं। बाघ को यदि शिकार करना है तो वह अन्य सभी प्राणियों को सावधान कर देता है कि जो अपनी आत्मरक्षा करना चाहता है वह अवश्य कर ले । अतः वह शिकार के पूर्व दहाड़ता है । "जिस दिन उसका संचित शिकार खत्म हो जाता है और उन्हें जोरो की भूख लगती है, उस दिन शाम को वह पूरे जंगल को कंपाकर गरजते हैं और समूचे जंगलवासियों को अगाह कर देते हैं कि आज जंगल के राजा को भूख लगी है। वह शिकार करने निकल रहा है। सभी सावधान हो जाएँ ।"[2] इस प्रकार के पूर्व संकेत जंगलों में विद्यमान है जब शेर अपने शिकार हेतु निकलता है उसके आगे-आगे टिटहरी अपनी आवाज करती हुई वन्य प्राणियों को सावधान करती हुई चलती रहती हैं । यह प्राकृतिक वन्य प्राणियों का कानून है कि पृथ्वी पर सभी जीव-जंतुओं का समान अधिकार है । अतः आत्मरक्षा का अवसर सभी को मिले यदि वे शेर से बचना चाहते हैं तो टिटहरी का संकेत पाकर अपने-आप को बचा ले । इन प्राकृतिक नियमों को आदिवासी समुदाय भी जानता, समझता है और इन संकेतों के अनुसार व्यवहार करता है। "यह टिटहरी जमीन पर बैठी रहती हैं, बाबू साहब ! शेर को गुजरते देखकर टिटहरी चिल्लाती हुई शेर के आगे-आगे चलती है।...यदि मैं संकेत पाकर गाड़ी न रोकता । तो आज हम जान से हाथ धो लिए होते।"[3]

अब एक आश्चर्यजनक सवाल मन में उठता है कि जमीन पर चिपकी रहने वाली टिटहरी शेर के आने के पूर्व कैसे जान लेती है ? यह किस प्रकार की तकनीक है ? इस तकनीकी का स्पष्टीकरण आदिवासी समुदायों में परम्परागत रूप से विद्यामान है । यह ज्ञान उन्हें अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होता आया है । आदिवासी समुदाय का सदस्य जमीन पर अपने कान टेककर एकाग्रता शक्ति द्वारा कितनी भी दूरी के संकेत अथवा वन्यजीव या मानव की उपस्थिति का पता लगा सकता है । "आसपास कोई इन्सान नहीं । गाँव भी नहीं दिख रहा है...बारिश का मौसम न होता तो जमीन पर कान लगाकर कुछ देर तक शांत होकर सुनने के बाद ही पता लगा लेता कि दूर-दूर तक कोई है या नहीं ।"[4] यह कान जमीन पर लगाकर दूर का संकेत पाना उसी टिटहरी की तकनीक है जिसके आधार पर वन्य प्राणियों को पूर्व संकेत देती है।

वन्य प्राणियों में मांसाहारी श्रेणी के प्राणी निर्वाह प्रक्रिया के आधार पर उनका जीवन होता है। जब तक उनके पास खाने को कुछ नहीं है तब तक वे शिकार अथवा संग्रह नहीं करते हैं। यदि शेर का पेट भरा हो तो उनके सामने यदि हिरण आ भी जाय वह उसका शिकार नहीं करेगा। "जब तक उनके पास शिकार का मारा बचा रहता है वे दूसरा शिकार नहीं करते ।"[5] हम समझते हैं कि वन्यप्राणी में बुद्धिमत्ता नहीं होती जो अप्रामाणिक है । वन्य प्राणी अपनी जीवन प्रक्रिया में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कई बुद्धिमत्तायुक्त व्यवहार करते रहते हैं। कई बार इसे मानव भी संभवतः न कर पाए। आँधी, तेज हवा के समय वन्य प्राणी बड़े पेड़ के नीचे खड़े नहीं होते क्योंकि बड़े वृक्षों पर बिजली गिरने की संभावित खतरे से वाकिफ होते हैं। इसलिए वे खुले में या किसी छोटे पेड़ के नीचे जाकर खड़े होने की कोशिश करते हैं । कुछ जानवर गुफाओं में शरण लेते हैं । जनजातीय समाज इन सब अलक्षित व्यवहार को जानते हैं। "सांभर और छोटे हिरणों के झुंड चुपचाप खड़े नजर आते हैं। पानी में भीगते हुए। बहुत निरीह लगते हैं वे ऐसे वक्त पर रमिल को । उन्हें मारने का मन नहीं करता ।"[6] इन पंक्तियों में वन्य प्राणियों की निरीहता और उनके प्रति आदिवासी समुदाय की संवेदनशीलता स्पष्ट झलकती है । आदिवासी व्यक्ति दुःखी, निराश्रय, रोते हुए पशुओ तथा क्षेत्र के दुर्लभ प्राणियों का शिकार कभी नहीं करेगा क्योंकि वह वन्य प्राणियों का महत्व तथा उनकी संवेदनाओं को जानता, परखता है।

हमने चर्चा की है कि बाघ अथवा शेर जब शिकार करने निकलता है तो गर्जना करता है और टिटहरी जैसे पूर्व

संकेत भी देती है फिर भी वह कैसे शिकार कर लेता है ? शिकार होने वाले प्राणियों द्वारा सावधानियाँ होने के बावजूद भी अपना शिकार कर लेना एक आश्चर्यजनक पहलू है । वन्य प्राणियों में सर्वाधिक चालाक प्राणी बाघ और शेर ही होते हैं। वे देखने व सुनने में बहुत तेज होते हैं । वे बहुत दूर तक देख सकते हैं और हल्की सी आहट पर दूर खड़े प्राणियों को पहचान लेते हैं कि वह बड़ा है अथवा छोटा, उनके कान की क्षमता बहुत होती है। अतः वे चहुओर से चौकन्ने होकर शिकार करते हैं किंतु प्रकृति ने उनकी एक सीमा भी गढ़ी है। बाघ अथवा शेर सूंघने की क्षमता में अन्य प्राणियों की तुलना में कम क्षमता रखते हैं। फलतः वे विशिष्ट शिकार का चुनाव प्राणि जात के आधार पर नहीं बल्कि प्राणियों के आकार का आधार पर करते हैं। शिकार होने वाले पशु देखने, सुनने सूँघने तीनों क्षमता में तेज होते हैं किंतु उनकी भी एक सीमा होती है, वे शेर अथवा बाघ की देह की गंध नहीं पहचान पाते क्योंकि बाघ अथवा शेर की देह की गंध होती ही नहीं अतः यदि शेर अन्य प्राणियों को देखने व सुनने की क्षमता को भूला दे तो वे प्राणी आसानी से शेर के शिकार हो जाते हैं।

इन सारी विशेषताओं और सीमाओं के बीच शेर अथवा बाघ अपना शिकार किस प्रकार करता है यह भी जानना आवश्यक है क्योंकि इन्हीं प्राणियों की व्यावहारिक प्रक्रियाओं के आधार पर हम खाद्य श्रृंखला को समझ पाएंगे । बाघ बहुत ही दक्षता, सूक्ष्म और बुद्धिमत्ता के साथ शिकार करते हैं । पहले तो वह दूर से आकार के आधार पर शिकार को निश्चित करता है । चुनाव के समय वह "कमजोर व मोटे तगड़े के बीच हमेशा मोटे तगड़े को ही चुनने की कोशिश करते हैं ताकि ज्यादा दिनों तक उससे अपना पेट भर सके ।"[7] शिकार चुनाव के पश्चात बाघ हवा की दिशा की मदद लेता है। वह जानता है कि दूर खड़ा शिकार उसके गंध से निश्चित है कि वह उनसे एक सुरक्षित दूरी पर है...कि जितनी दूरी से वह उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाएगा। अब बाघ शिकार के उस भरोसे को और पुख्ता करने हेतु उस जगह उलट,-पुलट कर खेलना आरंभ करता है। गर्जना करता और इस बीच शिकार उसे दूर से देखता रहता है। बाघ उसे छकाने अथवा आश्वस्त करने का प्रयास करता है कि हम अभी भी तुमसे दूर हैं फिर कुछ समय शांत होकर गर्जना करता है कि देखो अभी भी हम यही हैं तुम निश्चिंत रहो, मैं थोड़ी देर के लिए शांत हो गया तो भी यही हूँ। अतः तुम्हें भागने की आवश्यकता नहीं है फिर अचानक हवा के रूख की मदद लेते हुए बिजली के वेग से छलांग लगाकर पीछे की ओर से शिकार पर हमला बोल देता है । इस प्रकार चतुराई और बुद्धिमत्ता का प्रयोग वन्य प्राणियों में होते रहता है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति द्वारा खाद्य श्रृंखला को जारी रखने हेतु शिकार होने वाले पशुओं को आत्मरक्षा हेतु कुछ विशेषताएँ मिली हैं तो शिकार होने के लिए कुछ सीमाएँ भी, उसी प्रकार शिकार करने वाले प्राणी को शिकार करने की विशेषता, चातुर्य प्रदान किया गया है किंतु उनसे बचने हेतु उनमें कुछ सीमाएँ भी हैं। इस प्रकार व्यवहार में खाद्य श्रृंखला का परिक्रमण अनायास चलता रहता है। खाद्य श्रृंखला की इस लुका-छिपी चातुर्य में वही प्राणी जीवित रह पाता है जो अपनी विशेषता एवं सीमाओं से अवगत होकर निर्वाह करे। आदिवासी समुदाय खाद्य श्रृंखला अथवा खाद्य जाल जैसे सिद्धांतों से अवगत नहीं होते हैं किंतु उनकी जीवन प्रक्रिया प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से खाद्य श्रृंखला को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उनकी परम्परा और जीवनमूल्य सदियों से प्रकृति के गोद में विकसित हुए हैं जो स्पष्ट रूप से प्रकृति अनुकूल है। वे प्रकृति के दुर्लभ पौधों अथवा दुर्लभ प्राणियों को कभी क्षति नहीं पहुँचाते। वे इन वृक्षों को जौवीय गुणों से युक्त मानकर या तो पूजा करते हैं या अपने पूर्वजों के स्मृति चिह्न समझकर सम्मान करते हैं । ये वृक्ष पारितंत्र एवं भारतीय पर्यावरण की स्थिति में अति महत्वपूर्ण हैं । फलतः वे इन वृक्षों को धार्मिक रूप देकर रक्षा करने की चेष्टा करते हैं। उसी प्रकार वन्य प्राणियों में 'कस्तुरी मृग', 'गेंडा', 'शेर' जैसी 'पूँछ वाला मकाऊ', 'ग्रेट इंडियन बस्टर्ड', 'प्लोरिकन' जैसे दुर्लभ प्राणियों का शिकार नहीं करते हैं । साथ-साथ बाघ, शेर, हाथी जैसे महत्वपूर्ण वन्य प्राणियों का सम्मान करना उनकी परंपरागत व रीति-रिवाजों में विद्यमान है। "अचानक सामने जंगली हाथियों का झुंड आ जाने पर हाथ जोड़कर प्रार्थना करने का...अचूक मंत्र उसके ततंग ने उसे सिखा रखा है बचपन में ।"[8] इन जैसी अनेक रीति-रिवाज, परम्परा और जीवन शैली के मान दंड आदिवासी समाज में प्रचलित हैं जिनके फलस्वरूप पर्यावरणीय पारिस्थितिकी में वे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और जो इस पारिस्थितिकी को क्षति पहुँचाते हैं वे आदिवासी समुदाय को कतई स्वीकार नहीं होता है।"जंगल को, बुरुबोंगा को इस तरह से क्षति पहुँचाने वाले लोग बिल्कुल पसंद नहीं जाम्बीरा को ।"[9]

हम यह नहीं कह सकते कि वन्य पारितंत्र में सारे जीव-जंतु मिल-जुलकर रहते हैं किंतु इतना अवश्य कह सकते हैं कि कुदरती (प्राकृतिक) नियमों का पालन अवश्य करते हैं

। इन प्राणियों की आपसी भिडंत भी होती है और जो जीता वहीं उस क्षेत्र का सिकंदर होता है और जंगल में जीत उसी की होती है जो चालाक और ताकतवर है । इसलिए तो आज जंगलों में ग्लोबल गाँव के देवताओं की जीत हो रही है क्योंकि चालाक भी है और ताकतवार भी । यह जीत की प्रक्रिया वन्य प्राणियों के बीच भी होती है । "दो विशालकाय भालुओं को प्रचंड आक्रामकता के साथ एक-दूसरे से लड़ते पाया...आदिवासी जानता था कि इलाका दखल के लिए की जा रही यह लड़ाई तब तक जारी रहेगी जब तक इनमें से किसी एक की मौत न हो जाय ।"[10] इन हिंस्र पशुओं के बीच आदिवासियों का जीवन भी बहुत चुनौतीपूर्ण होता है । "बिलों में पानी भर जाने के कारण साँपों से खतरा बढ़ गया था । उनसे बचते-बचाते चलना पड़ रहा था ।"[11] वे आदिवासी इन चुनौतीपूर्ण जीवन का स्वीकार करते हैं और समुदायों में चुनौती का सामना करने हेतु बहुत सारी विधियाँ भी प्रचलित हैं । साँप का विष उतारने हेतु "नीक की टहनी हिला-हिलाकर...रूपी की माँ कोई बूटी उबालकर ले आई । थोड़ी सी दवा झूलन के मुँह में टपकाई गई थोड़ी कान में डाली गई ।"[12] और झूलन उठ खड़ा हो गया।

आदिवासी समाज वन्य प्राणियों से प्रभावित होते हैं उनकी क्रियाओं की सूक्ष्म जानकारी भी उन्हें होती है। जंगल में जंगली भैंसे, 'जंगली सुअर' या 'भालू' भी अत्यंत ताकतवर और खूंखार होते हैं। उनसे यदि कोई भीड़ जाए तो मार ही डालेंगे फिर भी आदिवासियों को उनसे भय नहीं लगता क्योंकि वे जानते हैं कि उन्हें कोई क्षति न पहुँचाए तो वे आहट पाते ही सामने से हट जाते हैं। मगर हाथी अचानक सामने चले आते हैं चुपचाप। बिना आवाज किए और हमला कर देते हैं। तीर से उनका कुछ नहीं होता। एक दिन आदिवासी गाँव पर ही जंगली हाथियों का झुंड हमला कर देता है जिसमें जांबिरा की पत्नी मेंजारी व उनका नन्हा बालक मर जाते हैं। "मेंजारी के अंदु पहनने वाले चिकने-चिकने पाँव कुचले जा चुके थे। पाँव ही क्या, उसके प्राण पखेरू भी उड़ने के बदले हाथी के भारी भरकम पैरों तले ही दबकर...फंसकर रह गये थे सीने से नंगे बच्चे को चिपकाएँ मेंजारी की क्षत-विक्षत देह जमीन पर औंधी पड़ी मिली थी।"[13]

वन्य प्राणियों की कुछ क्रियाएँ बड़ी आश्चर्यजनक होती हैं । सांपिन जब अपने बच्चों को जन्म देती है तब स्वयं उनको खा जाती है जिसका कारण भूख है । सांपिन के करीबन सौ के आसपास अंडे होते हैं यदि सभी अंडों से सांपों का जन्म हो जाता है तो धरती पर सांपों की भरमार रहती, किंतु प्रकृति ने ऐसा खेल रचा है कि जन्म के समय माँ को इतनी भूख लगती है कि वह स्वयं के पिल्लों को खाती है और कुछ ही बच्चे इस क्रिया में बच निकलते हैं । इस प्रकार संतुलित प्रजनन क्रिया। दूसरी बात यह है कि बाघ और बाघिन दोनों कुछ ही महीनों तक साथ रहते हैं फिर बाघिन बाघ को भगा देती है क्योंकि जन्म के समय बाघ अपने ही बच्चों को मारता है किंतु केवल नर बच्चों को, मादा को नहीं इसके पीछे भविष्य में नर बाघों द्वारा उन्हें कोई खतरा न हो इसलिए वह ऐसा करता है।"सभी बच्चों को नहीं, वह सिर्फ उसके नर बच्चों को ही मारने की कोशिश करता है ताकि वे बड़े होकर स्वयं उसे न मार डाले।"[14] किंतु बाघिन तो माँ है वह अपने शावकों को बचाने की पूरी कोशिश करती है।

इस प्रकार केवल आदिवासियों का ही नहीं बल्कि जंगल में सभी जीव-जंतुओं का जीवन प्रकृति द्वारा संतुलित नियम के नुसार अनायास चलता रहता है। आदिवासी समाज का हिंस्र पशुओं तथा अन्य समस्याओं के कारण जीवन कठिन है फिर भी वे प्राकृतिक सिद्धांतों का पालन करते हैं। बाघ शिकार के पहले चेतावनी देता है उसी प्रकार आदिवासी भी शिकार करने के पहले सभी वन्य प्राणियों को सावधान करते हैं क्योंकि पृथ्वी पर जीने का अधिकार सभी को है। अतः आत्मरक्षा का अवसर सभी को मिलना चाहिए। "एक बार फिर साकोवा बजा। डुगडुगी भी बजी- जंगली जानवरों को सावधान करने के लिए ताकि कोई ये आरोप न लगा पाए कि बिना संभलने का, भागने का मौका दिए ही बेचारे जानवरों पर हमला बोल दिया गया। आखिर शिकार का भी कोई नियम-कानून है कि नहीं ? "[15] स्वयं को सभ्य मानने वाले समाज को इन नियमों एवं कानूनों का अर्थ संभवतः समझने में कठिनाई तो नहीं बल्कि दिक्कत अवश्य होगी किंतु ये नियम-कानून सभी जीव-जंतुओं को प्राकृतिक रूप से प्राप्त जीने का अधिकार प्रदान है। उसे परिभाषित करते हैं। स्वयं आदिवासियों का जीवन चुनौतीपूर्ण होने के बावजूद वे वन्य प्राणियों के प्रति संवेदनशील हैं ।

जनजातीय समाज में प्रायः नीजी संपत्ती के सिद्धांत का अभाव होता है। प्राकृतिक संसाधनों पर सामूहिक अधिकार का सिद्धांत परम्परागत रूप से प्रचलित है। फलतः वन, नदी, नाले, सरिताएँ, वृक्ष, वन्य प्राणी आदि की सुरक्षा अब तक हो पायी क्योंकि जब व्यक्तिगत संपत्ति का सिद्धांत प्रचलित होता है तब पूँजीवाद का जन्म होता है और उसी पूँजीवाद ने आज चारों ओर से पर्यावरण संतुलन में नकारात्मक भूमिका निभा रहा है किंतु जनजातीय समूहों में सामाजिक अधिकार का सिद्धांत इस

बात पर बल देता है कि प्रकृति में जो भी है उस पर सभी का समान अधिकार है। अतः उन संसाधनों के उपयोग में इस सिद्धांत का पालन करने का हर संभव प्रयास करते हैं। “जब हम जंगलों पर, नदियों पर, जलाशयों पर पूरे गाँव के, समूह का अधिकार होता है तो कोई उसका उल्लंघन कर सकता है?”[16] जंगलों के खाद्य पदार्थों पर भी वे सभी जीवों का अधिकार स्वीकार करते हैं स्वयं आधे पेट भूखे रहते हैं किंतु सबके लिए बचाकर रखते हैं। “सारा फल तुम लोग ही खाओगे या पशु-पक्षियों के लिए भी कुछ छोड़ोगे ? चारिबा ने कहा।...तो सगेन ने बोला, बचपन से मैं सैकड़ों बार सुनता आया हूँ ये संवाद अपने बुजुर्गों से । अगर किसी पेड़ पर दो ही फल हो तो वे कहेंगे- एक तोड़ और एक छोड़ दे पक्षियों के लिए । चमगादड़ और गिलहरियों के लिए । आखिर हम इन्सानों की तरह उनका भी तो हक है पेड़-पौधों पर...।”[17] मुख्य समाज की तरह अकेला सब कुछ खा-पीकर गणेश महाराज के समान पेट बढ़ा लेने वालों के गले यह सिद्धांत नहीं उतरेगा। यह सिद्धांत प्रकृति और पशु-पक्षियों के साथ तालमेल रखकर जीने की कला तो आदिवासियों के पास ही है। अतः उन्हें आदिवासियों के पास जाना आवश्यक है तभी धरती की रक्षा हो सकती है।

आदिवासी समुदाय में जलस्त्रोतों को स्वच्छ रखना तथा भावी पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखने की परम्परा भी विद्यमान है जिसे आधुनिक शब्दावली में सतत पोषणीयता कहा जाता है। सतत् पोषणीयता को व्यावहारिक जीवन में उतारना तो हमें आदिवासियों से ही सीखना होगा। वहाँ के जल को (वनों के जल स्त्रोतों से) झूठा करने की सख्त मनाही है। “अगर कोई वहाँ का पानी पीना चाहता है तो साल वनों के दोनों में पानी पीकर दोने को दूर फेंक देना पड़ता है। दुबारा पीना हो तो उसे झूठे दोने में न देकर नये दोने में पीना पड़ता है। वरना ‘मरंग’ नाराज हो जाते हैं और हमारा अहित होने लगता है।”[18] इस विधि अथवा रीति को (सिद्धांत) भले ही धार्मिक आस्था से जोड़ दिया गया हो किंतु यह परम्परा प्रगतिशील, प्रकृतियुक्त और मानवीय है और हम नगरों के नगर का सारा दूषित जल अथवा कचरा जल स्त्रोत नदियों में छोड़ते हैं । इन दोनों स्थितियों में प्रकृति में सभ्य कौन है आदिवासी या नगरीय गैर आदिवासी ?

वन्य पारितंत्र में वन्य प्राणी-जीव जन्तुओं की क्रियाओं के आलावा पेड़-पौधों एवं वर्षा की भौगोलिक स्थिति का भी अध्ययन होता है । अध्ययन के अधिकतर उपन्यास मध्य भारत से संबंधित है । अतः मध्य भारतीय वन्य पारितंत्र की चर्चा करना समीचीन होगा । विभिन्न वन्य पारितंत्रों में कुछ समान कुदरती नियम होते हैं और कुछ क्षेत्रीयता के आधार पर । भारतीय उपमहाद्वीप विशेष रूप से दक्षिणी पश्चिमी मानसून आधारित वर्षा पर निर्भर है । तकनीकी रूप से भारत में सर्वप्रथम वर्षा का आरंभ अंडमान द्वीप समूह तथा पश्चिमी घाट में होती है किंतु शेष भारत में सर्वप्रथम वर्षा छत्तीसगढ़, झारखंड में होती है । “वन देवता की कृपा है इस जंगल पर । आसपास के सभी जंगलों से पहले बारिश हो जाती है यहाँ । बरसात से पहले ही । साल के बीज गिरने के चार पहर के अंदर-अंदर । मध्य वैशाख में ही...।”[19] सर्वप्रथम वर्षा होने का प्रमुख कारण मध्य भारत की भौगोलिक अवस्थिति है।

जब पश्चिम मानसून का आगमन होता है तो अरब सागर में यह मानसून दो शाखाओं में विभक्त हो जाता है । एक बंगाल की खाड़ी शाखा व दूसरा अरब सागर की शाखा । अरब सागर की शाखा में पुनः तीन शाखाओं का विभाजन होता है । एक शाखा पश्चिमी तट पर पवनाभिमुखी क्षेत्र में वर्षा करती है और दूसरी शाखा सीधे गुजरात, राजस्थान होकर हिमालय में वर्षा करती है किंतु तीसरी शाखा महत्वपूर्ण है जो नर्मदा नदी के सहारे, उत्तर में सतपुड़ा पर्वत श्रेणी तथा दक्षिण में सतमाल, अंजना, गोवलीगढ़ तथा महादेव पहाड़ियों के बीच से होती हुई बंगाल की शाखा में मिलने का प्रयास करती है । “इस समय पर्वत की अवस्थिति वर्षा का मुख्य निर्धारक होती है ।”[20] यह शाखा जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, वैसे-वैसे नीचे उतरती जाती है और छत्तीसगढ़ झारखंड के साल वृक्षों की लंबाई करीब 140-150 फीट होती है और “साल के पेड़ो में अपनी लंबाई से छः गुना अधिक ऊँचाई तक के इलाके को ठंडा रखने की क्षमता होती है ।”[21] अर्थात् साल वन अपने ऊपर से गुजरते मानसून को ठंडा करके वर्षा करने हेतु मजबूर कर देते हैं ।अतः सर्वप्रथम वर्षा हो जाती है । कहने का तात्पर्य यह कि मध्य भारत में साल वनों का पर्यावरणीय महत्व है किंतु वहाँ साल वनों को काटकर सागवान की रोपायी (वन का व्यावसायीकरण) हो रही है जो पर्यावरण निम्नीकरण का प्रमुख कारण है ।

कुछ दिन वर्षा होने के पश्चात रुक जाती है जिसे वर्षा अंतराल कहा जाता है । बीजों को पौधों के रूप में विकसित होने के लिए कुछ दिन पर्याप्त नमी की आवश्यकता होती है, ऐसी स्थिति में जब वर्षा अंतराल हुआ तो पौधे उग नहीं पाऐंगे इसलिए “सूखे पत्तों पर गिरे बीज, उन बीजों पर गिरे पत्ते, पत्तों से छन-छनकर आती

नमी एक ऐसा माकूल परिवेश निर्मित करते हैं कि देखते ही देखते बीज अंकुरित हो उठते हैं। वरना यदि इनके गिरने के एक-दो दिनों तक नमी न मिले तो बीज वीरगति को प्राप्त हो जाए।"[22] अर्थात सूखे पत्ते कुछ दिनों तक पर्याप्त नमी बनाए रखते हैं। इस प्रकार वनों का निर्माण होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वन्य पारितंत्र में कुछ भी व्यर्थ नहीं होता, सभी जैविक तथा अजैव पदार्थों की पारितंत्र में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस प्रकार मध्य भारत पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के लिए अति महत्वपूर्ण है। जिसे बचाने की आज आवश्यकता है। पर्यावरण हेतु यही क्षेत्र अधिक महत्वपूर्ण है जबकि दूसरी ओर इसी क्षेत्र में सर्वाधिक खनिज पदार्थ भी हैं । ऐसी स्थिति में एक उचित संतुलन की स्थिति की अवश्यकता है।

परितंत्र अध्ययन में जलस्त्रोत नदी, नाले, तालाब, जलाशय भी महत्वपूर्ण हैं । आदिवासी समाज इन स्त्रोतों से अपना ऐतिहासिक संबंध बनाए रखता है । जिस क्षेत्र में जो आदिवासी समुदाय निवास करता है वहाँ की नदियों अथवा प्राकृतिक जलाशयों के संबंध अपने पूर्वजों से जोड़ेंगे या फिर उनमें किसी देवताओं का वास समझेंगे । इन आस्थाओं और ऐतिहासिक संबंधों का कारण कुछ भी हो किंतु इन संबंधों से जलस्त्रोत को स्वच्छ निर्मल तथा शुद्ध अवश्य रखा जाता है । 'अमरकंटक' वन्य क्षेत्र में अधिकांश 'गोंड' जनजाति रहती है । जिस पर 'एल्वीन' जैसे विद्वानों ने अध्ययन किया और बाद के रचनाकारों ने 'जंगल के फूल', 'रथ के पहिए' जैसे उपन्यास भी लिखे हैं । उस क्षेत्र से नर्मदा एवं सोनभद्र नदियों का उदगम होता है, जिसका संबंध गोंड समुदाय ऐतिहासिक कहानी से जोड़ता है । "अमरकंटक की उस कहानी को ही लीजिए । ब्रह्मा की आँख से दो आँसू गिरे और दोनों आँसुओं से नर्मदा और सोनभद्र बह निकली ।"[23] अब हमें आश्चर्य लगता है कि इन दो नदियों के बीच संभवतः दो मिल का अंतर होगा (उदगम स्थान के बीच) क्या ब्रह्मा की आँखों के बीच इतना बड़ा अंतर है तो ब्रह्मा कितना बड़ा होगा ? यह सवाल स्वाभाविक है किंतु जब ब्रह्मा के आँसुओं से इन नदियों का उदगम हुआ है तो अवश्य इस बात का ध्यान रखा जाएगा कि उन नदियों को अपवित्र, दूषित अथवा प्रदूषित न करें । यही आज हमारे लिए महत्वपूर्ण है । इस प्रकार अनेक कहानियाँ, रीति-रिवाजों, विधियों के द्वारा आदिवासी समाज प्राकृतिक पारितंत्र में अनुकूल भूमिका निभाते हैं।

निष्कर्ष

अत: आदिवासी जीवन शैली प्रगतिशील और संधारणीय है क्योंकि जिस प्रकार प्राकृतिक परितंत्र में सभी जैविक घटक विभिन्न अघोषित नियमों का पालन करते हैं। परितंत्र में संतुलन बनाए रखने हेतु प्रकृति द्वारा प्रदत्त सभी प्राणियों की कुछ विशेषताएँ हैं तो कुछ सीमाएँ भी इसलिए संतुलन और जीवन सम्भव हो पाता है। आदिवासी समाज परितंत्र के नियमों से अवगत होता है तथा उनका पालन भी करता है। यह समाज आपने अधिकारों की रक्षा के साथ-साथ सभी जीवों तथा पेड, पौधों के प्राकृतिक अधिकारों को मान्यता प्रदान करता है और उनका सम्मान भी। कहना न होगा कि आज सभ्य समाज को आवश्यक है कि वह आदिवासी जीवन के उन विशेषताओं को अपनायें जो पर्यावरण संरक्षन में सहायक हैं। भले ही हम पर्यावरण संरक्षण, वृक्षारोपण, वन निरीक्षन, परीक्षन, परिरक्षन, पारिस्थितिकी विश्लेषण जैसे भारी-भरकम पारिभाषिक शब्दावलियों का नारा देते रहें किंतु जब तक हम स्वयं पर्यावरण हितैषी जीवन शैली को नहीं आपनायेंगे, जीव-जंतुओं, प्राणियों, पेड-पौधों का सम्मान नहीं करेंगे तब तक पर्यावरण निम्नीकरण होता रहेगा और पर्यावरण समस्याएँ यथावत बनी रहेगी। इस विषय पर आज गम्भीर रूप से विचार करने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. देवेंद्र सत्यार्थी, रथ के पहिए-पृ- 63
2. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ- 58
3. देवेंद्र सत्यार्थी, रथ के पहिए- पृ- 74
4. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ- 65
5. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ-58
6. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ-61
7. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ-62
8. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ-54
9. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ-65
10. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ-55
11. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ-55
12. देवेंद्र सत्यार्थी, रथ के पहिए – पृ-145
13. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ-49
14. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ-40

15. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ-99
16. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ-134
17. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ-290
18. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ-324
19. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ-13
20. महेश कुमार बर्नवाल, भूगोल एक समग्र अध्ययन-पृ-236
21. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ-13
22. महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ-पृ-13
23. देवेंद्र सत्यार्थी, रथ के पहिए – पृ- 141